दीन भाव

मन में तरंगें उठें तो सुमिरन व भजन करना चाहिये. सुरत को तीसरे तिल में मेटें. दोनों आंखों की रोशनी जहां मिलती है वहीँ ध्यान करना चाहिये. वहाँ ध्यान जमाने से प्रकाश नज़र आयेगा. शब्द भी वहीं पर सुनाई पड़ता है, परन्तु यह अन्तर में सुनना चाहिये. गुरु का ध्यान करना स्थूल, व शब्द का सुनना अथवा प्रकाश का देखना सूक्ष्म है. गुरु ध्यान करते - करते जब प्रकाश दिखाई देने लगे अथवा शब्द सुनाई पड़ने लगे तो फिर ध्यान को छोड़कर उसी को करने लगना चाहिये. अगर प्रकाश देखने या शब्द सुनने के साथ - साथ गुरु का ध्यान भी करते रहें तो चित्त ठिकाने न रहेगा और दोनों में से कोई भी नहीं हो सकेगा. नियमित ढंग से साधन में जब पुष्टता आयेगी तभी शब्द और ध्यान दोनों चल सकते हैं. तसबीर को सामने रख कर या किसी मूर्ति आदि पर ध्यान नहीं करना चाहिये. अगर गुरु सामने मौज़ूद हों, तो भी उनकी ख़्याली शक़्ल का ही ध्यान करना चाहिये. हाँलाकि यह ख़्याली शक़्ल का ध्यान भी स्थूल ही माना जाता है, पर शुरु - शुरु के अभ्यासियों को ऐसा करना कठिन होगा. चूँकि आत्मा के केन्द्र में ही परमात्मा है अतः उसका अनुभव हाँसिल करने के लिए ऐसी हालत पर आना है जहां कोई ख़्याल न हो. ध्यान अन्तर में होवे. इसके लिये यह आवश्यक है कि हमारी सुरत (attention) जो अभी बाहरी पदार्थो में लगी हुई है - वहाँ से हटे और सिमट कर अन्तर में लौटे. मन की धार यानी संकल्प - विकल्प जब तक शान्त न होंगें तब तक ध्यान पक्का नहीं हो सकता . मन काल का अंश है . यह सुरत को दुनियाँ और दुनियांवी पदार्थों की तरफ़ बिखेरता रहता है. मन सबसे अधिक तीव्र गति वाला और महा चंचल है, कभी शान्त नहीं रह सकता. इसकी उपमा शान्त -प्रशांत तालाब के जल से दी गई है. जैसे प्रशांत जल में हवा चलने से या हलकी से हलकी चीज़ फेंकने पर छोटी - छोटी तरंगें उठने लगतीं हैं वैसे ही इंद्रियों के प्रभाव से या शरीर के ज़रा से हिलने मात्र से मन में संकल्प - बिकल्प उठने शुरु हो जाते हैं. योग , यज्ञ, तप, तीर्थ, व्रत, नियम, पूजा आदि जो कुछ भी किए जाते हैं, पहले -पहल वे सब मन को शान्त करने के लिये ही किये जाते हैं. इन तरंगों की रोक -थाम सुमिरन व ध्यान से की जाती है. इसमें भींचा-भींचीं करनी पड़ती है. मन को वासनाओं से हटाना, भींचा - भींचीं कहलता है. इसके लिए कम खाना, कम सोना, कम बोलना, एकांत सेवन और ज्यादातर समय ध्यान में रत रहने की सलाह संत लोग देते हैं .

सुःख प्राप्ति से मन मोटा होता है. सुःख साधना में महा बाधक होता है. परमात्मा की याद दुःख में ही आती है. इसलिए दुःखों को परमात्मा की नियामत समझा जाता है. कहा भी है - " सुःख के माथे सिल परे, जो नाम हिए से जाय, बलिहारी वा दुःख की, जो पल -पल नाम रटाये . "

मन और माया को कमज़ोर करने के लिए अपने आप को दीन समझें. जब तक दीनता नहीं आती, तब तक आपा नहीं मिटता. आपा मिटे वगैर आत्मा का साक्षात्कार नहीं हो सकता और न आत्मानुभव के बिना उद्धार ही होता है. स्वार्थ और परमार्थ साथ- साथ नहीं रह सकते. केवल एक ही रह सकेगा. ख़ुदा (ईश्वर) को पाने के लिए खुदी (अहमपने) को निर्मूल करना पड़ेगा और वह तभी होगा जब दुनिया से सच्चा वैराग और गुरु चरणों में अनुराग होगा. वैराग का यह मतलब कदापि नहीं कि घर -बार, स्त्री ,परिवार आदि को छोड़कर जँगल में चला जाय. जंगल में जाने से क्या कहीं वैराग हो सकता है ? शरीर और मन तो वहाँ भी रहेंगे और जब ये रहेंगे तो इनके व्यबहार भी करने ही पड़ेंगे. सच्चे मायने में वैराग का अर्थ वीतराग होना है, यानी किसी चीज़ में राग (आसक्ति) न हो. शरीर से सब कुछ भोगता हुआ भी किसी चीज़ से लगाव न रहे और न कहीं अटकाव हो. चरणों में अनुराग से मतलब है कि हर समय अपने को, अपनी सुरत को परमात्मा के चरणों में लगाए रखें और उसकी मौज़ में अपने आप को लय कर दें. इस रास्ते में अनेकों कठिनाइयाँ आवेंगी, परंतु उनसे घबराएं नहीं. धैर्य पूर्वक गुरु में पूर्ण प्रीति और प्रतीत के साथ उनका बताया हुआ साधन करते जाय. सहायता अवश्य मिलेगी. तन का सुःख, इंद्रिय सुःख, मन का सुःख और बुद्धि का सुःख - इन सबको समता में लाकर इष्ट के अर्पण कर दें, अपने आप को पूर्ण रूप से उसके हवाले कर दें. इसके बाद कुछ करना धरना नहीं रहता. एक दीन भाव ही उसे निकाल ले जायेगा .

राम संदेश : अप्रैल , १९७९.